दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णय तिथि: 01.11.2013

आ.प्र.अ. (मूल पक्ष) 482/2011 एवं सि.वि.सं. 18432/2011

श्री सुदर्शन सरीन .....अपीलार्थी

बनाम

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड और अन्य .....प्रत्यर्थीगण

इस मामले में पेश हुए अधिवक्तागण:
अपीलार्थी हेतु: श्री संग्राम पटनायक और श्री दीपक कुमार।
प्रत्यर्थीगण हेतु: प्र-1 हेतु श्री सनत कुमार।

कोरम:-
माननीय न्यायमूर्ति श्री बदर दुर्रेज़ अहमद
माननीय न्यायमूर्ति श्री विभू बखरु

निर्णय

न्या. विभू बखरु

1. वर्तमान अपील अपीलार्थी (वाद में प्रतिवादी सं. 2 के रूप में प्रस्तुत) द्वारा इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सिविल वाद(मूल पक्ष) सं. 1982/1999 (जिसे इसके बाद "आक्षेपित आदेश" कहा जाएगा) में पारित दिनांक 08.08.2011 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है। आक्षेपित आदेश द्वारा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 21.02.2006 की एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए सि.प्र.स. के आदेश IX नियम 13 के तहत अपीलार्थी द्वारा दायर आवेदन अं.आ. सं. 14129/2009 को खारिज कर दिया

है। उक्त आवेदन को प्रस्तुत करने में हुई देरी को माफ करने के लिए सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के तहत दायर आवेदन अं.आ. सं. 14130/2009 को भी आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है।

2. प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा अपीलार्थी (प्रतिवादी सं. 2) और प्रत्यर्थी सं. 2 (प्रतिवादी सं. 1) के विरुद्ध दायर वाद, जिसका सिविल वाद (मूल पक्ष) सं. 1982/1999 है, दिनांक 21.02.2006 को डिक्री किया गया था। वर्तमान अपील में विवाद इस प्रश्न के इर्द-गिर्द घूमता है कि क्या एकपक्षीय डिक्री को रद्द किया जाना चाहिए, क्योंकि यह तर्क दिया गया है कि वादी प्रतिवादी सं. 1 का शेयरधारक है और प्रतिवादी सं. 1 के नियंत्रण में होने के कारण उसने वाद का विरोध करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया और परिणामस्वरूप प्रतिवादी सं. 2 जो किसी भी तरह से प्रतिवादी सं. 1 के ऋणों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं था, उसे डिक्री का सामना करना पड़ा।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि प्रत्यर्थी सं. 2 कंपनी अधिनियम के तहत निगमित कंपनी है। प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रत्यर्थी सं. 2 को की गई आपूर्तियों के लिए विभिन्न आपूर्तिकर्ताओं द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 पर निकाले गए बिलों के वित्तपोषण के लिए 15,00,000/- रुपये की ऋण सीमा स्वीकृत की। प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रत्यर्थी सं. 2 पर निकाले गए विभिन्न बिलों को भुनाया और प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विभिन्न आपूर्तिकर्ताओं को भुगतान किया। प्रत्यर्थी सं. 2 ने उक्त ऋण की अदायगी में चूक की। अपीलार्थी, जो उस समय प्रत्यर्थी सं. 2

का निदेशक था, ने दिनांक 31.05.1996 को एक पत्र भेजा था, जिसके द्वारा उसने प्रत्यर्थी सं. 1 को प्रत्यर्थी सं. 2 की बकाया राशि 17,09,779/- रुपये ब्याज सहित चुकाने का वचन दिया था।

4. बेशक, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 2 बकाया राशि का भुगतान करने में विफल रहे। नतीजतन, प्रत्यर्थी सं. 1 ने 36,76,949.05/- रुपये की बकाया राशि की वसूली के लिए वाद दायर किया। उक्त वाद में, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 2 दोनों को समन भेजा गया था। प्रत्यर्थी सं. 2 शुरू में अधिवक्ता के माध्यम से पेश हुआ था और एक लिखित बयान दाखिल किया था, हालांकि, वह उसके बाद कार्यवाही में पेश होने में विफल रहा और दिनांक 10.08.2005 को एकपक्षीय कार्यवाही की गई। अपीलार्थी ने समन की सेवा के बावजूद वाद में उपस्थिति दर्ज नहीं कराई और दिनांक 06.09.2000 को एकपक्षीय कार्यवाही की गई। प्रत्यर्थी सं. 1 ने एकपक्षीय साक्ष्य प्रस्तुत किया और दिनांक 21.02.2006 को वाद प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में घोषित किया गया। अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध 36,76,949.05 रुपए की राशि के साथ-साथ बकाया राशि और भावी ब्याज का आदेश पारित किया गया।

5. अपीलार्थी ने दावा किया है कि उसे पहली बार दिनांक 25.09.2009 को एकपक्षीय डिक्री के बारे में पता चला जब निष्पादन कार्यवाही में ईपी सं. 371/2009 के तहत समन उसे भेजा गया था। इसके बाद, दिनांक 22.10.2009 को अपीलार्थी ने सि.प्र.स. के आदेश IX नियम 13 के तहत एक

आवेदन (अं.आ. सं. 14129/2009) दायर किया, जिसमें दिनांक 21.02.2006 की एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन (अं.आ. सं. 14130/2009) के साथ उक्त आवेदन दाखिल करने में देरी के लिए माफी मांगी गई।

6. उक्त आवेदन में अपीलार्थी द्वारा यह तर्क दिया गया कि प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा स्वीकृत, लिए गए और उपयोग किए गए ऋण के लिए अपीलार्थी को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है। यह भी तर्क दिया गया कि प्रत्यर्थी सं. 2 से देय राशि का भुगतान करने का वचन अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 के निदेशक के रूप में अपनी आधिकारिक क्षमता में दिया गया था और इस प्रकार, इसे उसकी व्यक्तिगत गारंटी के रूप में नहीं माना जा सकता है। यह भी दावा किया गया कि अपीलार्थी प्रासंगिक समय पर प्रत्यर्थी सं. 2 का प्रबंध निदेशक था, हालांकि, उसने तब से इस्तीफा दे दिया था और उसके इस्तीफे को प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा अपने पत्र दिनांक 04.02.1997 के माध्यम से विधिवत स्वीकार कर लिया गया था। रजिस्ट्रार ऑफ कंपनीज के अभिलेख के अनुसार, अपीलार्थी दिनांक 06.09.1997 से प्रत्यर्थी सं. 2 का निदेशक नहीं रहा।

7. अपीलार्थी की ओर से यह तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 एक सार्वजनिक कंपनी है और अपीलार्थी उक्त कंपनी के साथ निदेशक के रूप में जुड़ा हुआ था। यह भी तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 2 कंपनी का एक बड़ा शेयरधारक है और यदि कॉर्पोरेट पर्दा हटा दिया जाए तो

यह पाया जाएगा कि प्रत्यर्थी सं. 2 प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा नियंत्रित है और इस प्रकार, प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा प्राप्त डिक्री एक मिलीभगत वाली डिक्री है। वाद में समन की सेवा के संबंध में, यह स्वीकार किया गया कि अपीलार्थी ने समन प्राप्त किया, हालांकि, यह तर्क दिया गया कि उन्हें प्रत्यर्थी सं. 2 को इस कथित आश्वासन पर सौंप दिया गया था कि प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा अपीलार्थी का उचित प्रतिनिधित्व किया जाएगा।

8. हमने पक्षकारगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना है।

9. यह तर्क कि चूंकि प्रत्यर्थी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 2 का शेयरधारक है, प्रत्यर्थी सं. 1 के कहने पर पारित डिक्री एक मिलीभगतपूर्ण डिक्री है, टिकाऊ प्रतीत नहीं होती है। जबकि, यह सही है कि प्रत्यर्थी सं. 1 के पास प्रत्यर्थी सं. 2 कंपनी की संपूर्ण जारी और चुकता शेयर पूंजी का लगभग 10% हिस्सा है, यह भी उतना ही सच है कि अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों के पास भी प्रत्यर्थी सं. 2 कंपनी के पर्याप्त शेयर हैं।

10. इस विवाद पर विचार करने के लिए कि क्या एकपक्षीय डिक्री को रद्द किया जा सकता है, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश IX का नियम 13 प्रासंगिक है और इसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है:

> "**13. प्रतिवादीगण के विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करना** —किसी ऐसे मामले में जिसमें किसी प्रतिवादी के विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री पारित की जाती है, वह उस न्यायालय से,

जिसने डिक्री पारित की थी, उसे अपास्त करने के आदेश के लिए आवेदन कर सकता है; और यदि वह न्यायालय को संतुष्ट करता है कि समन की विधिवत तामील नहीं की गई थी, या जब वाद की सुनवाई के लिए बुलाया गया था तो उसे उपस्थित होने से किसी पर्याप्त कारण से रोका गया था, तो न्यायालय ऐसी शर्तों पर उसके खिलाफ डिक्री को रद्द करने का आदेश देगा। लागत के संबंध में, न्यायालय में भुगतान या अन्यथा जैसा वह उचित समझे, और वाद की कार्यवाही के लिए एक दिन नियुक्त करेगा:

परन्तु जहां डिक्री ऐसी प्रकृति की है कि उसे केवल ऐसे प्रतिवादी के विरुद्ध अपास्त नहीं किया जा सकता, वहां उसे अन्य सभी प्रतिवादीगण या उनमें से किसी के विरुद्ध भी अपास्त किया जा सकेगा:

आगे यह भी प्रावधान है कि कोई भी न्यायालय एकपक्षीय रूप से पारित डिक्री को केवल इस आधार पर अपास्त नहीं करेगा कि समन की तामील में अनियमितता हुई है, यदि उसका समाधान हो जाता है कि प्रतिवादी को सुनवाई की तारीख की सूचना थी तथा उसके पास उपस्थित होने तथा वादी के दावे का उत्तर देने के लिए पर्याप्त समय था।

स्पष्टीकरण— जहां इस नियम के तहत एकपक्षीय पारित डिक्री के खिलाफ अपील की गई है, और अपील का निपटान इस आधार के अलावा किसी अन्य आधार पर किया गया है कि अपीलार्थी ने अपील वापस ले ली है, इस नियम के तहत एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने के लिए कोई आवेदन नहीं होगा।"

11. सि.प्र.स. के आदेश IX नियम 13 के प्रावधानों को सरलता से पढ़ने पर पता चलता है कि एकपक्षीय डिक्री को तब रद्द किया जा सकता है जब

प्रतिवादी न्यायालय को यह संतुष्टि दे कि समन की तामील विधिवत नहीं की गई थी या जब वाद की सुनवाई के लिए बुलाया गया था तो उसे पर्याप्त कारण से उपस्थित होने से रोका गया था। सि.प्र.स. के आदेश 9 नियम 13 के दूसरे प्रावधान के अनुसार, न्यायालय को समन की तामील में अनियमितता या ऐसे मामले में जहां प्रतिवादी को सुनवाई की तारीख की सूचना थी और न्यायालय में उपस्थित होने के लिए पर्याप्त समय था, मात्र एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने से रोका गया है।

12. उच्चतम न्यायालय ने ***परिमल बनाम वीणा: (2011) 3 एससीसी 545*** के मामले में माना है कि सि.प्र.स. के आदेश IX नियम 13 का दूसरा प्रावधान अनिवार्य है और "पर्याप्त कारण" अभिव्यक्ति की व्याख्या इस प्रकार की है:

> **"13.** "पर्याप्त कारण" एक अभिव्यक्ति है जिसका उपयोग बहुत से क़ानूनों में किया गया है। "पर्याप्त" शब्द का अर्थ "उचित" या "पर्याप्त" है, क्योंकि यह इच्छित उद्देश्य को पूरा करने के लिए आवश्यक हो सकता है। इसलिए, "पर्याप्त" शब्द में केवल वही शामिल है जो एक सामान्य बात है जो तब की गई कार्रवाई के लिए पर्याप्त है जो किसी मामले में मौजूद तथ्यों और परिस्थितियों में इच्छित उद्देश्य को पूरा करने के लिए पर्याप्त है और एक सतर्क व्यक्ति के उचित मानक के दृष्टिकोण से उचित रूप से जांच की गई है। इस संदर्भ में, "पर्याप्त कारण" का अर्थ है कि पक्ष ने लापरवाही से काम नहीं किया था या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उसकी ओर से सद्भाव की कमी थी या पक्ष पर "मेहनत से काम नहीं करने" या "निष्क्रिय रहने" का आरोप नहीं लगाया जा सकता है।

हालांकि, प्रत्येक मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ संबंधित न्यायालय को विवेक का प्रयोग करने में सक्षम बनाने के लिए पर्याप्त आधार प्रदान करनी चाहिए क्योंकि जब भी न्यायालय विवेक का प्रयोग करता है, तो उसे विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग करना चाहिए। (देखें रामलाल बनाम रीवा कोलफील्ड्स लिमिटेड [एआईआर 1962 एससी 361], लोनंद ग्रामपंचायत बनाम रामगिरी गोसावी [एआईआर 1968 एससी 222], सुरिंदर सिंह सिबिया बनाम विजय कुमार सूद [(1992) 1 एससीसी 70] और ओरिएंटल अरोमा केमिकल इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम गुजरात इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट कॉरपोरेशन [(2010) 5 एससीसी 459]।)

XXX XXX XXX XXX XXX

15. यह तय करते समय कि पर्याप्त कारण है या नहीं, न्यायालय को सभी संबंधित पक्षों के साथ पर्याप्त न्याय करने के उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए और यह कि कानून की तकनीकी बातें न्यायालय को पर्याप्त न्याय करने और उसके समक्ष दिए गए निर्णय के आधार पर कायम अवैधता को समाप्त करने से नहीं रोकनी चाहिए। (बिहार राज्य बनाम कामेश्वर प्रसाद सिंह [(2000) 9 एससीसी 94], मदनलाल बनाम श्यामलाल [(2002) 1 एससीसी 535], दविंदर पाल सहगल बनाम प्रताप स्टील रोलिंग मिल्स (पी) लिमिटेड [(2002) 3 एससीसी 156], राम नाथ साव बनाम गोबरधन साव [(2002) 3 एससीसी 195], कौशल्या देवी बनाम प्रेम चंद [(200 5) 10 एससीसी 127], श्रेई इंटरनेशनल फाइनेंस लिमिटेड बनाम फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड [(2005) 13 एससीसी 95] और रीना साध बनाम अंजना एंटरप्राइजेज [(2008) 12 एससीसी 589]।)

16. आदेश 9 नियम 13 सि.प्र.स. के तहत आवेदन का निर्धारण करने के लिए, जो परीक्षण लागू किया जाना है वह यह है कि क्या प्रतिवादी ने ईमानदारी और निष्ठा से उस समय उपस्थित रहने का इरादा किया था जब वाद की सुनवाई के लिए बुलाया गया था और ऐसा करने के लिए उसने अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास किया था। इस प्रकार पर्याप्त कारण वह कारण है जिसके लिए प्रतिवादी को उसकी अनुपस्थिति के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। इसलिए, आवेदक को उचित बचाव के साथ न्यायालय का दरवाजा खटखटाना चाहिए। पर्याप्त कारण तथ्य का प्रश्न है और न्यायालय को मामले में विभिन्न और विशेष परिस्थितियों में अपने विवेक का प्रयोग करना होगा। सार्वभौमिक आवेदन का कोई स्ट्रेटजैकेट फॉर्मूला नहीं हो सकता है।"

13. ***जी.पी. श्रीवास्तव बनाम आर.के. रायजादा: (2000) 3 एससीसी 54 के*** मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:-

"7. आदेश 9 नियम 13 सि.प्र.स. के तहत प्रतिवादी के खिलाफ पारित एकपक्षीय डिक्री को न्यायालय की संतुष्टि पर रद्द किया जा सकता है कि या तो प्रतिवादी को समन विधिवत रूप से तामील नहीं किया गया था या उसे सुनवाई के लिए बुलाए जाने पर किसी "पर्याप्त कारण" से उपस्थित होने से रोका गया था। जब तक सुनवाई की तिथि पर मामले में प्रतिवादी की गैरहाजिरी के लिए "पर्याप्त कारण" नहीं दिखाया जाता है, तब तक न्यायालय के पास एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने का कोई अधिकार नहीं है। न्यायालय को पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने में सक्षम बनाने के लिए "किसी पर्याप्त कारण से उपस्थित होने से रोका गया" शब्दों

की उदारतापूर्वक व्याख्या की जानी चाहिए, खासकर तब जब गलती करने वाले पक्ष पर कोई लापरवाही या निष्क्रियता आरोपित न हो। आदेश 9 नियम 13 के प्रयोजन के लिए पर्याप्त कारण को एक लोचदार अभिव्यक्ति के रूप में समझा जाना चाहिए जिसके लिए कोई कठोर और तेज़ दिशा-निर्देश निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं। प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पर्याप्त कारण तय करने में न्यायालयों के पास व्यापक विवेकाधिकार है। गैरहाजिरी के लिए "पर्याप्त कारण" उस तिथि को संदर्भित करता है जिस पर अनुपस्थिति को एकपक्षीय कार्यवाही के लिए आधार बनाया गया था और इसे समय से पहले की अन्य परिस्थितियों पर निर्भर होने के लिए नहीं बढ़ाया जा सकता है। यदि प्रतिवादी के खिलाफ एकपक्षीय कार्यवाही शुरू होने पर सुनवाई के लिए तय की गई तारीख पर गैरहाजिरी के लिए "पर्याप्त कारण" बनाया जाता है, तो उसे उसकी पिछली लापरवाही के लिए दंडित नहीं किया जा सकता है जिसे पहले अनदेखा किया गया था और इस तरह माफ कर दिया गया था। ऐसे मामले में जहां प्रतिवादी तुरंत और निर्दिष्ट वैधानिक समय के भीतर न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है, आमतौर पर विवेक का प्रयोग उसके पक्ष में किया जाता है, बशर्ते अनुपस्थिति दुर्भावनापूर्ण या जानबूझकर न की गई हो। मामले में किसी पक्ष की अनुपस्थिति के लिए दूसरे पक्ष को पर्याप्त लागतों से मुआवजा दिया जा सकता है और मामले का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जा सकता है।"

14. उपरोक्त निर्णयों के बाद, हमें नहीं लगता कि अपीलार्थी कार्यवाही में उपस्थित न होने के लिए पर्याप्त कारण दिखा पाया है। वर्तमान मामले में, अपीलार्थी ने समन की तामील को स्वीकार किया है। बेशक, अपीलार्थी को वाद

के लंबित होने की जानकारी थी और उसके पास उपस्थित होने और प्रतिवादी सं. 1 के दावे का जवाब देने के लिए पर्याप्त समय था। अपीलार्थी द्वारा न्यायालय में उपस्थित न होने का एकमात्र कारण प्रतिवादी सं. 2 द्वारा दिया गया कथित आश्वासन है कि अपीलार्थी का मामले में उचित प्रतिनिधित्व किया जाएगा। हम पाते हैं कि यह कारण किसी भी तरह से अपीलार्थी की गैर-उपस्थिति के लिए पर्याप्त कारण नहीं बन सकता है। बेशक, कार्यवाही के बारे में पता होने के बावजूद, अपीलार्थी ने न तो यह सुनिश्चित करने के लिए कोई प्रयास किया कि न्यायालय के समक्ष उसका प्रतिनिधित्व किया जाए और न ही उसने कार्यवाही के परिणाम के बारे में खुद को अवगत कराने का कोई प्रयास किया। अपीलार्थी ने जानबूझकर लापरवाही बरती है और इस प्रकार, सि.प्र.स. के आदेश IX नियम 13 के तहत अपीलार्थी के पास कोई सहारा उपलब्ध नहीं है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या अपीलार्थी का आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश IX नियम 13 के दायरे में आता है और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया हैः-

> "10. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि आदेश IX नियम 13 का दूसरा प्रावधान प्रकृति में अनिवार्य है। एकपक्षीय डिक्री को अलग करने के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाने वाले पक्ष को "पर्याप्त कारण" का खुलासा करना होगा जिसके द्वारा उसे न्यायालय में उपस्थित होने से रोका गया था। "पर्याप्त कारण" का मतलब होगा कि (i) पक्ष ने लापरवाही से काम नहीं किया था (ii) उसने सद्भाव से काम किया था, लेकिन उसके नियंत्रण से परे तथ्यों और परिस्थितियों के कारण न्यायालय में उपस्थित नहीं हो सका (iii)

> वह अपने लिए उपलब्ध कानूनी उपाय का पालन करने में लगन से काम कर रहा था। क्या कोई पक्ष "पर्याप्त कारण" का खुलासा करने में सफल हुआ है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और सार्वभौमिक आवेदन का कोई सीधा फार्मूला नहीं अपनाया जा सकता है। इस मामले में, आवेदक अगस्त/सितंबर, 2000 से वाद के लंबित होने के बारे में अच्छी तरह से जानता था चूंकि आवेदक को मामले के लंबित होने की जानकारी थी, इसलिए एकपक्षीय आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन में भी लगभग साढ़े तीन साल की देरी हुई, जिसके लिए कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं है। हालांकि, देरी के सवाल पर विचार किए बिना, आदेश IX नियम 13 सि.प्र.स. के तहत आवेदन का गुण-दोष के आधार पर निपटान किया जा रहा है। कुल मिलाकर आवेदक ने यह पता लगाने की जहमत नहीं उठाई कि वाद में क्या हो रहा था। उसका यह आचरण ही स्पष्ट रूप से उसकी ओर से सद्भावना की कमी को दर्शाता है और दिखाता है कि वह मामले को आगे बढ़ाने में घोर लापरवाही बरत रहा था। मेरे विचार से, वह "पर्याप्त कारण" का खुलासा करने में विफल रहा है जिसके कारण उसे 2000 से 2006 तक न्यायालय में पेश होने से रोका गया था, जब अंततः डिक्री पारित की गई थी।"

15. हम यह स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि जब वाद सुनवाई के लिए बुलाया गया था तो अपीलार्थी को किसी पर्याप्त कारण से उपस्थित होने से रोका गया था। हम विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय से सहमत हैं और वर्तमान अपील को किसी भी योग्यता से रहित पाते हैं। तदनुसार, हम वर्तमान अपील और आवेदन को लागत के संबंध में कोई आदेश दिए बिना खारिज करते हैं।

न्या. विभू बखरु

न्या. बदर दुर्रेज़ अहमद

1 नवंबर, 2013
आरके

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्मेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा/ समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*